International Journal of Information Movement Vol.5 Issue XII (April 2021)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 28-37

# षट्कर्मीय उपादेयता व मूल्यांकन सिद्धान्त

**डॉ० राकेश गिरि**
प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Email: rgiri1955@gmail.com

**राहुल कुमार**
शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Email: rahul30upadhyay@gmail.com

प्राचीन योग उपनिषदों में हठयोग का वर्णन षट्कर्मों के रूप में किया गया है। यह एक सुव्यवस्थित एवं यथार्थ विज्ञान है। हठयोग का और साथ ही षट्कर्मों का उद्देश्य है– दो मुख्य प्राण–प्रवाहों, इड़ा और पिंगला के बीच सामंजस्य स्थापित कर, इनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शुद्धिकरण एवं संतुलन प्राप्त करना। इनका उपयोग शरीर में वात, पित्त और कफ को सन्तुलित करने के लिए भी किया जाता है। आयुर्वेद एवं हठयोग दोनों के अनुसार इन त्रिदोषों के बीच असन्तुलन होने से रोग उत्पन्न होता है। शरीर को विषाक्त तत्त्वों से मुक्त करने एवं अध्यात्म–मार्ग पर सुरक्षित रूप से सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए भी प्राणायाम एवं उच्च योगाभ्यासों से पूर्व इन अभ्यासों का आवश्यक है।[1]

## 1.0 षट्कर्म का अर्थ, अवधारणा एवं परिभाषा

'षट्कर्म' शब्द में दो शब्दों का मेल है– षट्+कर्म; षट् शब्द का अर्थ है– छः तथा कर्म का अर्थ है– क्रियायें। अतः छः क्रियाओं के समुदाय को षट्कर्म कहा जाता है। ये छः क्रियाएँ योग में शरीर आन्तरिक शोधन हेतु प्रयोग में लाई जाती है। ये शोधन क्रियाएँ – **धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक व कपालभाति** है। जैसे आयुर्वेद में पंचकर्म चिकित्सा को शोधन चिकित्सा के रूप में स्थान प्राप्त है, उसी प्रकार षट्कर्म को योग में शोधनकर्म के रूप में जाना जाता है। ***अतः शरीर शुद्धिकरण की वह छः क्रियायें जिन्हें आसन व प्राणायाम से पहले आन्तरिक अंगों की शुद्धि हेतु प्रयोग में लाया जाता है तथा जिसके फलस्वरूप शरीरस्थ दोष, धातुएँ व अग्नियाँ साम्यवस्था को प्राप्त कर समन्वय रूप से कार्य करते हैं, उन्हें षट्कर्म कहते हैं।***

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्त एवं दर्शन के अनुसार शरीर के सफाई के माध्यमों में अयोग्य आहार–विहार व अन्य कारणों से विकृति आ जाने के कारण शरीर की धातुओं (वात, पित व कफ) में असंतुलन पैदा होकर विकृति (प्रकोय इत्यादि) का रूप बन जाता है तथा शरीर की जैविक क्रियाओं से उत्पन्न दूषित व विषैले द्रव्यों का निष्कासन सुचारू रूप से नहीं हो पाता। यही दूषित पदार्थ रक्त के साथ शरीर में मिलकर अन्य अवयवों को विकृत कर देते हैं और रोग की अवस्था पैदा हो जाती है। यौगिक षट्कर्मों अर्थात् शोधन के छः प्रकारों से विषैले पदार्थों का निष्कासन होता है और धातुओं के बीच संतुलन बनाये रखा जा सकता है। जब ये धातुएँ सन्तुलन की अवस्था में रहती है, तो व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम

[1] स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन, प्राणायाम मुद्रा बंध, पृष्ठ 501

रहता है। इसी को योग में दोषों व धातुओं की समावस्था को 'समत्वं योग उच्यते' कहा गया है। समत्व की अवस्था से ही कर्मों में कुशलता आती है। इस प्रकार यौगिक षट्कर्मों के द्वारा शरीर का शोधन होता है।

उपनिषदों में कहा गया है – बलहीन शरीर से आत्मा साक्षात्कार सम्भव नहीं है। इसलिए शरीर में व्याधियों को उत्पन्न न होने देने और यदि व्याधि उत्पन्न हो गयी हो तो उसे दूर करने के लिए तथा शरीर को स्वस्थ व साधनायोग्य बनाने के लिए हठयोगियों ने षट्कर्मों का विधान किया है। महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में इनको शौच के अन्तर्गत रखा है। परन्तु समय और अनुभव ने हठयोगियों को सिखाया कि प्राणायाम आदि क्रियाओं से जितने समय में शरीर के मल दूर किये जाते हैं, उससे कम समय में षट्कर्मों द्वारा शरीर के मल दूर किये जा सकते हैं। इसलिए इन कर्मों की आवश्यकता को अनुभव करते हुए इनका विकास किया गया। इन षट्कर्मों का विधान इस प्रकार किया गया कि ये सम्पूर्ण शरीर की शुद्धि करने में समर्थ हो सके।

हठयोग व योग के अन्य सभी आध्यात्मिक ग्रंथों में प्राणायाम के महत्त्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया है। हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम को मन को स्थिर करने वाला माना है। मनुस्मृति में इन्द्रियों के सभी दोषों को दूर करने के लिए प्राणायाम का निर्देश किया गया है। योगवसिष्ठ में प्राणायाम को मोक्ष तक की सभी सम्पदायें प्रदान करने वाला बताया गया है।

प्राणायाम के ये सभी लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब प्राणायाम सिद्ध कर लिया गया हो और प्राण शरीरगत सूक्ष्म से सूक्ष्म नाड़ियों में संचरण करने लगे और वह तभी सम्भव है, जब शरीर की स्थूल व सूख्म नाड़ियाँ मलों से रहित हो गयी हों, अन्यथा प्राणायाम बहुत समय में सिद्ध होगा तथा शरीर में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। इसीलिए हठयोग के ग्रंथों में प्राणायाम साधना से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास का विधान किया है, जिससे शरीर मलों से रहित हो सके और प्राणायाम का पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके।

संत चरणदास जी सर्वप्रथम षट्कर्म अभ्यास करने के सम्बन्ध में कहते हैं– साधना में प्रथम षट्कर्मों का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि इनके करने से शरीर शुद्ध हो जाता है, शरीर में कोई रोग नहीं रह पाता अर्थात् शरीर निरोग हो जाता है तथा बुद्धि भी प्रकाशमान हो जाती है, जिससे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

**पहिले ये सब साधिये, काया होवै शुद्धि।**
**रोग न लागै देह को, उज्जवल होवै बुद्धि।।**[2]

इन षटकर्मों के सम्बन्ध में योगी स्वात्माराम जी ने भी कहा है– शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली ये छः क्रियाएँ गोपनीय रखनी चाहिए। इसीलिये योगिराजों द्वारा इनहें बहुत महत्व दिया गया है।

**कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।**
**विचित्रगुणसंधायिपूज्यते योगिपुङ्गवैः।।**[3]

---

[2] निसर्गोपचार वार्ता, राष्ट्रीय प्राकृतिक संस्थान पुणे, फरवरी 2009
[3] अष्टांग योग, श्लोक 155

शरीर की शुद्धि के पश्चात् ही साधक आन्तरिक मलों की निवृत्ति करने में सफल होता है। प्राणायाम से पूर्व इनकी आवश्यकता इसलिए भी कही गई है कि मल से पूरित नाड़ियों में प्राण–संचरण न होने के कारण साधना में सफलता होना सम्भव नहीं है।

**मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।**
**कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्।।**[4]

और जब षट्कर्मों के अभ्यास से नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तो योगी प्राणायाम करने में समर्थ हो जाता है।

**शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम्।**
**तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः।।**[5]

इसलिए स्थूल तथा श्लेष्माधिक्य वाले साधकों को षट्कर्मों का अभ्यास करके शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए, अन्य साधकों जिनके त्रिदोष साम्यावस्था में है, उनको करने की विशेष आवश्यकता नहीं है।

**मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।**
**अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।**[6]

इन षट्कर्मों का प्रयोजन केवल शरीर की शुद्धि ही नहीं, वरन् आत्मशुद्धि भी है, क्योंकि शरीर की शुद्धि के साथ–साथ जब हमारे भीतर से विकास दूर होने लगते हैं, तब स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। बिना शुद्धि के शरीर योग के उच्च अभ्यासों के लिए तैयार भी नहीं होता है। शुद्धि के पश्चात् मनुष्य दीर्घायु हो जाता है। उपनिषदों और वेदों में यह चर्चा कई स्थानों पर की गयी है कि हम सौ वर्षों तक जीयें– 'जीवेम् शरदं शतम्'। यह वेद, उपनिषदों की विचारधारा ही नहीं, वरन् वास्तविक सत्य भी है। मनुष्य यदि विकार रहित रहे, स्वस्थ रहे, तो सौ वर्षों तक या इससे अधिक जीना स्वाभविक है।[7]

**षट्कर्मों का उद्देश्य**

षट्कर्मों का मूल उद्देश्य पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति है। ये शरीर की शोधन क्रियाएँ हैं, जो शरीरस्थ विषाक्त तत्त्वों को बाहर निकालने तथा वात–पित्त–कफ तीनों दोषों को आवश्यक अनुपात में बनाये रखने में सहायक होती हैं। षट्कर्म की क्रियाओं में धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक व कपालभाति आते हैं। धौतिक्रिया सभी संस्थानों का शोधन करती है। श्वास रोग, कफ रोग, गैस, कब्ज, अग्निमाद्य, अम्लपित्त, रक्तविकार, चर्म रोग, एलर्जी, मोटापा आदि रोगों में यह क्रिया विशेष अत्यन्त लाभकारी है। बस्तिक्रिया मलाशय व बड़ी आंत का शोधन करती है। इससे गुल्म, प्लीहा, जलोदर, अग्निमांद्य, कब्ज, वातरोग आदि विकार दूर होते हैं। नेतिक्रिया नासिका मार्ग की सफाई करती है। इससे कपाल का शोधन होता है। नेत्र रोग नजला, जुकाम, एलर्जी, श्वास–प्रश्वास में कठिनाई, नासांकुर वृद्धि, स्मरण शक्ति का ह्रास आदि रोगों में यह क्रिया लाभकारी होती है। नौलिक्रिया उदरस्थ पेशियों व आंतों को स्वस्थ बनाने की

---

4 ह०प्र० 2/23
5 ह०प्र० 2/4
6 ह०प्र० 2/5
7 ह०प्र० 2/21

क्रिया है, यह पाचन संस्थान व प्रजनन अंगों को लिए उत्तम अभ्यास है। यह महिलाओं के मासिक धर्म सम्बन्धी विकार तथा जननांगों की दुर्बलता दूर करने में भी सहायक है। त्राटक कर्म नेत्र शोधन की क्रिया है, जो नेत्र रोगों का नाश करके तन्द्रा व आलस्य को दूर करने में सहायक है, इसके अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है। कपालभाति फेफड़ों को स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया है, जिससे कफ रोग, चर्म रोग, रक्त विकार आदि दूर होते हैं। पेट के रोगों जैसे– कब्ज, गैस व मधुमेह में भी इसका अभ्यास उपयोगी है।

इस प्रकार षट्कर्म की क्रियाएँ अनेक रोगों में लाभकारी है। यदि इन क्रियाओं का अभ्यास मनुष्य आवश्यकतानुसार करता रहे, तो वह स्वस्थ रह सकता है।

## 2.0 षट्कर्मों का वर्गीकरण

शरीर शोधन के लिए वर्णित षट्कर्मों के बारे में हठप्रदीपिका में कहा गया है कि धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति ये छः कर्म हैं।

**धौतिर्बस्तिस्तथानेति सत्राटंक तथा।**
**कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।**[8]

जिनके द्वारा शरीर की शुद्धि होती है। इसके अतिरिक्त हठप्रदीपिका में गजकरणी का भी वर्णन किया गया है। हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

**षटकर्म (हठप्रदीपिका अनुसार)**

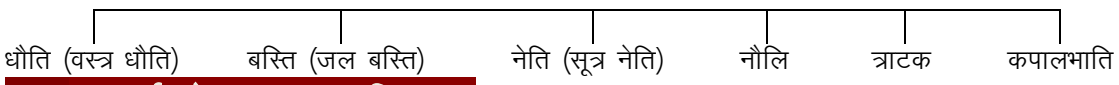


## 3.0 षट्कर्म के मूल्यांकन सिद्धान्त

### 3.1. प्रारम्भिक तैयारी का सिद्धान्त

षटकर्मों का मूल्यांकन करते समय निरीक्षक को चाहिए कि वह जाँचे कि परीक्षार्थी ने षट्कर्म की परीक्षा हेतु प्रारम्भिक तैयारी कर ली है या नहीं। इससे निरीक्षक गण को अपना समय बचाने में व तनाव रहित मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ– जल नेति, सूत्र नेति, वमन दण्ड व वस्त्र धौति आदि में निरीक्षक गण को यह देखना होता है कि परीक्षार्थी उपयुक्त पोषक व खाली पेट तथा विभिन्न स्वच्छतापूर्ण उपकरणों सहित उपस्थित हुआ है या नहीं। उपकरणों में लोटा, सूत्र नेति, रबर नेति, तेज गर्म जल से प्रक्षालित होने चाहिये; वस्त्र धौति, सूत्र, दण्ड धौति उबली हुई होनी चाहिए। जल नेति हेतु लोटा आधा जल का भरा होना चाहिए। यदि षट्कर्मों में जल का उपयोग करते समय गीजर के गर्म जल को स्वतः ठण्डा होने देना चाहिये, ना कि ठण्डा पानी मिलाकर गुनगुना बनाना चाहिये; ठण्डा पानी मिलाने से जल कीटाणु रहित नहीं हो पाता। इससे जल के संक्रमण होने का खतरा बना रहता है।

### 3.2 स्वच्छता का सिद्धान्त

[8] स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता, पृष्ठ 24

निरीक्षक को चाहिये कि परीक्षार्थी षट्कर्म का अभ्यास करते समय स्वच्छता का पूर्ण रूप से ध्यान रखता है या नहीं; क्योंकि अस्वच्छता से शरीर के संक्रमण का आक्रमण हो सकता है। षटकर्मों का अभ्यास का उद्देश्य संक्रमण फैलाना नहीं अपितु संक्रमण रहित विधि अपनाकर उसका पूर्ण लाभ लेना है।

उदाहरणार्थ– जल नेति, वमन धौति, दण्ड धौति, वस्त्र धौति इत्यादि में नमक का उपयोग करते हुए नमक को नमक–पात्र में से चुटकी के साथ नहीं उठाये अपितु चम्मच का प्रयोग करके नमक निकालना है; यदि नमक सभी परीक्षार्थियों से चुटकियों से नमक उठाया जायेगा तो उससे संक्रमण होने का खतरा बना रहता है। इसी प्रकार कोई भी षट्कर्म करने से पहले हाथों को साबुन से अच्छे से धो लेना चाहिये, वमन क्रिया करते समय हाथों के नाखुन कटे होने चाहिये इत्यादि।

## 3.3 शान्त, स्थिर एवं एकाग्रता का सिद्धान्त

निरीक्षक को चाहिए कि परीक्षार्थी का निरीक्षण करे कि षटकर्म जैसी क्रूर क्रिया को करते समय उसका मन शान्त व स्थिरतापूर्वक है या नहीं, क्योंकि स्थिर, विक्षेपित, चिन्ता आदि त्रुटियाँ करवाकर हानि पहुँचा सकता है।

उदाहरणार्थ– जल नेति करते समय शीघ्रता के कारण लोटे की चोंच ढीली व त्रुटिपूर्ण हो सकती है। परीक्षार्थी सूत्र नेति करते समय एक या दो कोशिश करने के साथ हड़बडाहट कर सकता है या अधैर्यता कर सकता है।

दण्ड धौति व वस्त्र धौति करते समय अनावश्यक उल्टी कर सकता है। अतः मूल्यांकन हेतु परीक्षार्थी षटकर्म के समय स्थिर शान्त व एकाग्र चित्त होना चाहिये।

## 3.4 उपयुक्त विधि व सरलता का सिद्धान्त

उपयुक्त विधि और सरलता का निरीक्षण करते समय निरीक्षक को चाहिए कि परीक्षार्थी षट्कर्म करते समय उपयुक्त विधिपूर्ण षट्कर्मों को कर रहा है या नहीं; क्योंकि अगर उपयुक्त विधि को ध्यान में रखकर षट्कर्म नहीं कर रहा है तो त्रुटियाँ बढ़ जायेगी और षट्कर्मों में सरलता भी नहीं आती है; जिससे शरीर को हानि होती है।

उदाहरणार्थ– जल नेति करते समय लोटे की चोंच को नाक के छिद्र में अच्छे से नहीं डालते हैं तो जल दोनों छिद्र से निकलता है, उसका पूर्ण रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है, जिससे जल नेति नहीं हो पाती है और उचित परिणाम नहीं मिल पाते हैं।

उसी प्रकार सूत्र नेति करते समय सूत्र को श्वास के साथ अन्दर नहीं ले जाया गया, तो वह सूत्र अन्दर नहीं पहुँचता है और अन्दर पहुँचने के बाद उसको हाथ की उंगलियों की कैंची बनाकर गले से पकड़ना चाहिये, इसीलिए उपयुक्त विधि द्वारा यदि षटकर्म किये जाते हैं, तो उसमें सरलता अवश्य होती है।

अतः षट्कर्मों को विधिपूर्वक करना अवश्य होता है, जिससे सरलतापूर्वक षटकर्म किये जा सकते हैं।

## 3.5 समयबद्धता का सिद्धान्त

निरीक्षक को चाहिये कि परीक्षार्थी षट्कर्मों को करते समय उस षट्कर्म में कितना समय लगा रहा है यदि षट्कर्म क्रिया में अत्यधिक समय लगा रहा है– तो उससे ज्ञात होता

है कि परीक्षार्थी की पूर्व तैयारी नहीं है और वह समय की बोध्यता को ध्यान नहीं रख रहा है। अतः षट्कर्मों को करते समय यदि अभ्यास ठीक प्रकार का होगा, तो निश्चित समय में ही अभ्यास पूर्ण कर लिया जायेगा।

उदाहरणार्थ– वस्त्र धौति क्रिया करते समय यदि समय का ध्यान नहीं रखा जाता है, तो वह पेट में अन्दर ही अन्दर क्रिया करने लगती है; जिससे अधिक समय होने पर वह बाहर नहीं आती और फिर आपरेशन करके ही उसको बाहर निकालना पड़ता है जिससे शारीरिक हानि होती है। षट्कर्मों का शरीर के दोषों को शान्त करना है, शरीर को हानि पहुँचाना नहीं। अतः षट्कर्मों के अभ्यास में समय की बाध्यता का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

## 3.6 त्रुटि प्रतिशत का सिद्धान्त

त्रुटि प्रतिशत के सिद्धान्त को ध्यान में रखते समय परीक्षक को चाहिए कि परीक्षार्थी षट्कर्मों के अभ्यास क्रिया में उचित ड्रेस कोड – ठीक प्रकार की पोषक; उपयुक्त जल, उपयुक्त वस्तु; तौलिया, योगामैट, लोटा इत्यादि सभी अपनी हों, यदि वह दूसरे के उपकरण का उपयोग करता है, तो उससे संक्रमण फैलने का डर रहता है। जल नेति करते समय लोटे की नोंक ठीक प्रकार से लगाकर कर रहा है या नहीं; आँखों से पानी तो नहीं आ रहा है, छींके, खांसी, उल्टी तो नहीं आ रही इत्यादि का ध्यान रखना चाहिये; इससे सभी त्रुटियों का ध्यान रखते हुए परीक्षार्थी के त्रुटियों के प्रतिशत का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

अतः त्रुटियों के प्रतिशत का होना षट्कर्मों की क्रियाओं पर प्रभाव डालता है जिससे निश्चित परिणाम नहीं मिल पाते हैं।

## 3.7 सावधानी प्रयोगात्मक सिद्धान्त

षट्कर्मों के प्रयोगात्मक क्रियाओं को करते समय एकाग्रता से मूल्यांकन करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षार्थी द्वारा किये जा रहे षट्कर्म में सावधानीयों को बरतते हुए किया जा रहा है या नहीं; यदि है तो कितने प्रतिशत अर्थात् सावधानी प्रयोग प्रतिशत।

उदाहरणार्थ– जैसे जल नेति करते समय गर्म जल में ठण्डा जल तो नहीं मिलाया गया।

नमक डालते समय हाथों से चुटकी द्वारा नमक तो नहीं डाला।

जल नेति के पश्चात वातक्रम, कपाल भाँति तथा शशांकासन के माध्यम से करते हुए पानी को बाहर निकाला है या नहीं।

बस्ति क्रिया के समय प्रयोग में गये जल का तापमान अधिक तो नहीं है इत्यादि सावधानियों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

## 3.8 पुनरावृत्ति के सिद्धान्त

परीक्षक को चाहिये कि परीक्षार्थी द्वारा षट्कर्म क्रिया को करते समय एक ही क्रिया को करते हुए बार–बार अभ्यास यदि कर रहा है, तो वह पुनरावृत्ति कहलायेगी जिससे ज्ञात होता है कि परीक्षार्थी की पूर्व तैयारी नहीं है, जिससे वह बार–बार पुनरावृत्ति कर रहा है।

उदाहरणार्थ– सूत्र नेति करते हुये बार–बार सूत्र डालते हुये भी सूत्र अन्दर नहीं जा रहा है। सूत्र नेति नहीं हो पा रही है; जिससे बार–बार पुनरावृत्ति कर रहा है इत्यादि। षट्कर्मों

में बार–बार किये जाने वाले पर भी क्रिया नहीं हो रही है। वह पुनरावृत्ति कहलाती है अतः पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये। यदि हो, तो उसे त्रुटि प्रतिशत में गिनना चाहिये।

## 4.0 षट्कर्म के लाभ

षट्कर्म के बहुत सारे लाभ हैं। इसके कुछ महत्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं–

1. षट्कर्म या शोधन की योग क्रिया एक ऐसी योगाभ्यास है जो शरीर को आन्तरिक रूप से शुद्ध करने में अहम् भूमका निभाती है। हठयोग के अनुसार शुद्धि क्रिया शरीर में एकत्र हुए विकारों, अशुद्धियों एवं विषैले तत्वों को दूर कर शरीर को भीतर से स्वच्छ करती है।
2. उच्चतर योग साधना की दिशा में षट्कर्म एक पहला चरण है। शुद्धिकरण योग शरीर, मस्तिष्क एवं चेतना पर पूर्ण नियंत्रण का आभास देता है।
3. शोधन क्रियाएं स्वच्छ करने की क्रियाओं और तकनीकों की बात करता है, जिनसे शरीर भीतर से स्वच्छ होता है। ये प्रक्रियाएं मनुष्य को प्रत्येक स्तर पर शक्तिशाली एवं व्यापक रूप रोगों से दूर रखता है।
4. रोगों, विकारों तथा अशुद्धियों को शरीर से दूर करने के लिए पूरे शरीर के पूर्ण शुद्धिकरण की प्रक्रिया आवश्यक है। जहाँ षट्कर्म अहम् भूमिका निभाता है। जब शरीर में अत्यधिक विकार हो अथवा शरीर में वात, पित्त तथा कफ का असंतुलन हो, तो प्राणायाम और योगासन से पूर्व षट्कर्म करना चाहिए। प्राणायाम साधना आरम्भ करने से पूर्ण सबसे पहले नाड़ी शुद्ध होनी चाहिए, जो षट्कर्म के अभ्यासों द्वारा करनी चाहिए।
5. जब शरीर शुद्ध होगा तो रासायनिक घटकों का अनुपात संतुलित रहेगा इससे मस्तिष्क के कामकाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और शरीर तथा मस्तिष्क को स्वस्थ रखने में सहायता मिलेगी। शुद्धिकरण से मस्तिष्क को शांत रखने एवं बेचैनी, सुस्ती, नकारात्मक विचारों तथा भावनाओं को दूर करने में सहायता मिलती है। जब मस्तिष्क शांत तथा सतर्क होता है तो जागरुकता का स्तर सरलता से बढ़ाया जा सकता है। षट्कर्म तनाव से लड़ने एवं स्वास्थ्य सुधारने में सहायता करते हैं। वे विश्राम प्रदान कर तनाव कम करने में सहायता प्रदान करते हैं।

## 5.0 षट्कर्म की प्रमुख छः क्रियाओं में–

1. धौति (कुंजल एवं वस्त्रधौति) क्रिया सम्पूर्ण पाचन का शोधन करती है और साथ ही साथ यह अतिरिक्त पित्त, कफ, विष को दूर करती है, तथा शरीर के प्राकृतिक संतुलन को सन्तुलित करती है।
2. वस्ति, शंखप्रक्षालन तथा मूलशोधन से आंतें पूरी तरह स्वच्छ हो जाती है, पुराना मल एवं कृमि दूर हो जाते हैं, पाचन विकारों का उपचार होता है।
3. नेति नियमित रूप से नेति क्रिया करने पर कान, नासिका एवं कंठ क्षेत्र से गंदगी निकालने की प्रणाली ठीक से काम करती है तथा यह सर्दी एवं कफ, एलर्जीक रिह्मेसाईटिस, ज्वर, टॉन्सिलाइटिस आदि दूर करने में सहायक होती है। इससे अवसाद, माइग्रेन, मिर्गी एवं उन्माद में यह लाभप्रदायक होती है।

4. नौली क्रिया उदर की पेशियों, तंत्रिकाओं, आंतों, प्रजनन, उत्सर्जन एवं मूत्र संबंधी अंगों को ठीक करती है। अपच, अम्लता, वायु विकार, अवसाद एवं भावनात्मक समस्याओं से ग्रस्त व्यक्ति के लिए लाभदायक है।
5. त्राटक नेत्रों की पेशियों, एकाग्रत तथा मेमोरी के लिए लाभप्रद होती है। इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव मस्तिष्क पर होता है।
6. कपालभाति– कपालभाति बीमारियों से दूर रखने के लिए रामबाण माना जाता है। यह बलगम, पित्त एवं जल जनित रोगों को नष्ट करती है। यह सिर का शोधन करती है और फेफड़ों एवं कोशिकाओं से सामान्य श्वसन क्रिया की तुलना में अधिक कार्बन डाईऑक्साइड निकालती है। अतः कहा जाता है कि षट्कर्मों में कपालभाति प्रत्येक रोगों का इलाज है।

1. षट्कर्मों से शरीर का शोधन होता है।
2. रक्त संचरण ठीक प्रकार से होता है।
3. रक्त सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।
4. त्वचा सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।
5. कब्ज, बवासीर, भगन्दर पेट के सभी रोगों को दूर करते हैं।
6. षटकर्म की छः क्रियाएँ शरीर को सम्पूर्ण रूप से रोग मुक्त रखती है।
7. शरीर के विषाक्त तत्व शरीर से बाहर निकालते हैं।
8. वात, पित्त, कफ समान होते हैं।
9. नाडीयों का शुद्धिकरण होता है।
10. मानसिक व शारीरिक रोग दूर होते हैं।
11. योग की उच्चतम योग साधना पर जाने वाली दिशा में षटकर्म पहला चरण है।
12. मस्तिष्क को शांत रखने व बेचौनी, सुस्ती, नकारात्मकता को दूर करने का कार्य करता है।
13. बस्ति, शंखप्रक्षालन से तथा मूलशोधन से आंते पूरी तरह से स्वच्छ कर, पुराना सड़ा हुआ मल दूर हो जाता है। पाचन तन्त्र के विकारों का उपचार करता है।
14. जिस समय शरीर में अत्यधिक विकार हो और वात, पित्त तथा कफ असन्तुलित हो, तो प्राणायाम और योगाभ्यास से पूर्ण षटकर्म करने से लाभ प्राप्त होता है।

## 6.0 षट्कर्म की प्रासंगिकता

1. **स्वास्थ्य के क्षेत्र में**
2. **चिकित्सा के क्षेत्र में**
3. **प्रतिरोधात्मक के क्षेत्र में**
4. **योग साधना क्षेत्र में**
5. **प्रतियोगिता क्षेत्र में**

## 6.1 स्वास्थ्य के क्षेत्र में

योग की षटकर्म क्रियाओं के अभ्यास से स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायता मिलती है। स्वस्थ व्यक्ति यदि सप्ताह में एक या दो बार धौति, वस्ति, नेति, त्राटक

एवं कपाल भाँति षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास करते रहे तो दोष, धातु व अग्नियाँ सम रहेगी जिससे उनका स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

## 6.2 चिकित्सा के क्षेत्र में

चिकित्सा के क्षेत्र में षटकर्म की प्रासंगिकता महत्वपूर्ण हैं। हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि यदि शरीर में मेद धातु या श्लेष्मा की अधिक मात्रा है तो प्राणायाम से पूर्व षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

**मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं षटकर्माणि समाचरेत्।**[9]

स्वामी चरणदास जी षटकर्म की नेति क्रिया की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि–

**कान नाक अरू दाँत को, रोग न व्यापै कोय।**
**उज्जवल होवे नैनही, नित नेति करि सोय।।**[10]

अर्थात् नेति क्रिया के नित्य अभ्यास करने से कान, नाक तथा दाँत के रोग कभी नहीं होते हैं तथा नयनों में तेजस्विता आती है।

## 6.3 प्रतिरोधात्मक के क्षेत्र में

षटकर्म की क्रियाएँ शरीर में रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता का विकास करता है। वर्तमान समय में कोरोना महामारी से बचाव में नेति क्रिया एवं वमन क्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार बार–बार हाथ धोने से हाथों में लगी गंदगी व वायरस धुल जाते हैं उसी प्रकार नेति क्रिया से नाक व गले की गंदगी व वायरस धुलकर साफ हो जाते हैं तथा वमन धौति के अभ्यास से मुँह, गला व पेट की गंदगी साफ होती है जिससे शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है तथा रोगों का निवारण होता है। नौलि व अग्नि सार क्रियाओं से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। नौलि व अग्निसार क्रियाओं से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। धौति व कपाल भाँति से कफ रोग के प्रति प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है।

## 6.4 योग साधना क्षेत्र में

योगियों को अपनी योग साधना में आगे बढ़ने के लिए षटकर्म क्रियाओं का विशेष योगदान है। योगियों को बन्ध के अभ्यास के लिए सर्वप्रथम बस्ती क्रिया करके पेट (बड़ी आँत) की सफाई करनी पड़ती है। पेट की सफाई होने से मूल बन्ध तथा उड्डीयानबन्ध लगाने में सहायता मिलती है। षटकर्म की त्राटक व कपालभाँति क्रियाओं के अभ्यास से आज्ञा चक्र की शुद्धि होती है और योगी ध्यान के अभ्यास के लिए तैयार होता है। इससे ध्यान लगाने में सरलता होती है। योग साधना में सफलता के लिए समयानुसार छः माह में एक बार शंका प्रक्षालन करना अनिवार्य है। जिससे शरीर की शुद्धि होती है एवं योग साधना में सफलता मिलती है।

## 6.5 प्रतियोगिता क्षेत्र में

प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय योग प्रतियोगिताओं में षट्कर्म की क्रियाओं का अभ्यास विशेष रूप से कराया जाता है, इससे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय स्तर के

---

9 घे०सं० 1/54
10 ह०प्र० 2/36

विद्यार्थियों में षट्कर्म के अभ्यास में रूचि उत्पन्न करना होता है। जिससे विद्यार्थी षटकर्मों का नियमित अभ्यास करके अपने आप को स्वस्थ बनाते हैं।

## 7.0 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 दिगम्बर जी, स्वामी एवं झा, पीताम्बर (1980) हठप्रदीपिका (स्वात्माराम, कृत); कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगन्दिर समिति, लोनावाला (पुणे)।
2 द्वारिकादास शास्त्री, स्वामी (2009) हठयोग प्रदीपिका; चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
3 सरस्वती, निरंजनानन्द (1997) घेरण्ड संहिता; योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार)।
4 तिवारी, ओमप्रकाश (1983) अष्टांगयोग (संत चरणदास कृत); कैवल्यधाम, लोनावाला (पुणे)।
5 सरस्वती, सत्यानन्द (2006) आसन प्राणायाम मुद्राबंध; योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार)